Chap-4

अध्याय-चतुर्थ

प्रसाद काव्य में सौंदर्य विधान

सौंदर्य सम्बंधी अवधारणा- सौंदर्य के विविध रूप - मानवीय सौंदर्य - नारी सौंदर्य - पुरुष सौंदर्य - बाल सौंदर्य- प्रकृति सौंदर्य - वस्तुगत सौंदर्य-कलागत सौंदर्य- भाषा-शब्दशक्तियाँ- छन्द-अलंकार -निष्कर्ष ।

:: प्रसाद काव्य में सौंदर्य विधान ::

प्रसाद जी सौंदर्य के कवि हैं। उनके काव्य की मुख्य विशेषता उनका सौंदर्य-चित्रण है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार 'प्रसाद के समान सौंदर्य के प्रेमी कवि बहुत ही विरल हैं और पार्थिव सौंदर्य को स्वर्गीय महिमा से मंडित करके प्रकट करने का सामर्थ्य तो इतना और किसी में नहीं है।'[1]

प्रसाद जी ने सौंदर्य भावना की मानसिक शक्ति या सुन्दर और कुरूप की निर्णय क्षमता को 'सौंदर्य-विवेचना' अथवा 'सौंदर्य विवेक' का नाम दिया है।[2] उन्होंने सौंदर्य को पदार्थ या व्यक्ति का बाहरी गुण मात्र ही नहीं अपितु ईश्वरीय विभूति भी माना है। उन्होंने सौंदर्य को विश्व व्यापी चेतना से सम्बद्ध देखा है, इसी कारण उसे उज्ज्वल एवं सात्विक वरदान बताया है -

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।[3]

कवि के विचार से सौंदर्य के प्रत्येक कृति के परदे के पीछे ईश्वर नाम की कोई अन्य विभूति छिपी बैठी है -

सुन्दरता के इस परदे में
क्या अन्य धरा कोई धन है?[4]

सौंदर्य की अनुभूति, चाहे वह मानवीय सौंदर्य की हो या प्राकृतिक सौंदर्य की एक न एक दिन अवश्य ही सत्य के दर्शन करा देगी -

मानवी या प्राकृतिक सुषमा सभी
दिव्य शिल्पी के कला-कौशल सभी
देख लो जी-भर इसे देखा करो
इस कलम से चित्त पर रेखा करो
लिखते-लिखते चित्र वह बन जायगा
सत्य-सुन्दर तब प्रकट हो जायगा ।[५]

सौंदर्य बाहर की ऐन्द्रिक उपासना में नहीं है । ऐन्द्रिय सीमाओं से बँधा हुआ सौंदर्य क्षणभंगुर होता है और ऐन्द्रिय सीमाओं से परे रहने वाला सौंदर्य शाश्वत होता है । इसलिए उन्होंने हमेशा शाश्वत सौंदर्य की ओर ही अग्रसर किया है -

क्षणभंगुर सौंदर्य देखकर रीझो मत, देखो । देखो ।
उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है ।[६]

इसी दृष्टिकोण को प्रसाद जी ने 'आँसू' में भी व्यक्त किया है -

छायानट छवि परदे में
सम्मोहन वेणु बजाता
सन्ध्या कुहुकिनि अंचल में
कौतुक अपना कर जाता ।[७]

कवि का विश्वास है कि जीवन मुक्ति सौंदर्य के द्वारा संभव है -

प्रार्थना अन्तर की मेरी -
यही जन्मान्तर की हो उक्ति ।
'जन्म इसे हो, निरखूँ तब सौंदर्य
मिले इंगित से जीवन मुक्ति ।'[८]

प्रसाद जी के अनुसार अगर वास्तविक सौंदर्य के दर्शन करने हैं तो हृदय को प्रशांत व गंभीर बनाना जरूरी है -

सृष्टि में सब कुछ है अभिराम,
सभी में है उन्नति या ह्रास ।
बना लो अपना हृदय प्रशान्त,
तनिक तब देखो वह सौंदर्य ।[९]

अगर जी खोलकर सौंदर्य के दर्शन कर लिए तो जीवन-रत्न प्रेम की पताका चारों ओर फहरायेगी । इसलिए कवि कहता है सबको सौंदर्य से तृप्त होकर ही लौटना चाहिए -

मानस उसको कहते हैं
सुख पाता जो है जाता ।[१०]

हर मनुष्य को सौंदर्य की अनुभूति नहीं होती बल्कि इसके लिए अथक मानसिक साधना करनी पड़ती है । जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों से एक दिन सौंदर्य की अनुभूति अवश्य होगी और ज्ञात होगा कि सौंदर्य क्या है तथा उसकी क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं । उसी समय हमें यह भी पता चल जाएगा कि वह कौन सी वस्तु है, जिसके लिए प्राणी यहाँ आकर इतना सुख-दुःख सहन करते हैं -

उस दिन तो हम जान सके थे
सुन्दर किसको हैं कहते ।
तब पहचान सके, किसके हित
प्राणी यह दुख-सुख सहते ।[११]

इस प्रकार प्रसाद जी की सौंदर्य सम्बंधी धारणा अत्यन्त व्यापक है । प्रसाद जी न तो सौंदर्य को केवल भावना मात्र ही कहते हैं और न वस्तु का

बाहरी गुण-धर्ममात्र हीं । उनकी दृष्टि में तो जहाँ- जहाँ भी आत्मा का प्रकाशन है वहीं- वहीं सौंदर्य है ।

सौंदर्य के विविध रूप :

प्रसाद काव्य में सौंदर्य चार रूपों में दृष्टिगत होता है -

(१) मानवीय सौंदर्य
(२) प्रकृति सौंदर्य
(३) वस्तुगत सौंदर्य
(४) कलागत सौंदर्य

(१) मानवीय सौंदर्य :

प्रसाद जी मानवीय भावनाओं के ही कवि हैं । उन्होंने मनुष्य के बाह्य और आन्तरिक सौंदर्य के बहुत ही आकर्षक चित्र प्रस्तुत किए हैं । प्रसाद जी ने मनुष्य का बाह्य रूपांकन भारतीय संस्कृति के आदर्शों के अनुसार किया है और भारतीय मूर्तिकला के अनुसार मनुष्य की आकृति और गठन का चित्रण किया है । उन्होंने आत्मा के सौंदर्य को ही वास्तविक सौंदर्य माना है । उनके मतानुसार सुन्दर आकृति में सुन्दर गुणों का होना ही मानवीय सौंदर्य की सबसे बड़ी विशेषता है । कोई भी मनुष्य चाहे कितना ही वीर, महत्वाकांक्षी और आत्मबल वाला क्यों न हो परन्तु वह तब तक महान नहीं कहला सकता जब तक उसमें करुणा, दया, प्रेम और उदारता जैसे गुण नहीं हैं । मानवीय सौंदर्य के अन्तर्गत उन्होंने पुरुष और नारी दोनों का ही सौंदर्य अंकित किया है । परन्तु उनकी दृष्टि में पुरुष की अपेक्षा नारी श्रेष्ठ है । यही कारण है कि उन्होंने नारी के सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हुए अद्भुत कला- कौशल का परिचय

दिया है ।

१) नारी सौंदर्य :

प्रसाद काव्य में मानवीय सौंदर्य के अंतर्गत नारी सौंदर्य की प्रमुखता रही है । वे रूप और यौवन के अद्वितीय कलाकार हैं । नारी सौंदर्य की आकर्षक झाँकी प्रस्तुत करने में तो प्रसाद जी बहुत ही कुशल हैं । डॉ० शान्ति स्वरूप गुप्त के मतानुसार- `प्रसाद नारी- रूप के सफल चितेरे हैं, उन्होंने इसका सौंदर्य चित्रण करने के लिए पारम्परिक शैली अथवा बासी उपमान प्रयुक्त नहीं किए हैं । उनकी उपमाएँ सद्यः सौरभ से सुवासित हैं, वचन-वक्रता, लाक्षणिक पदावली, प्रकृति से लिए गए प्रतीक और मौलिक बिंब-विधान ने उनकी नारी को अपार ऐश्वर्य मंडित रूप की साम्राज्ञी बना दिया है ।' [१२]

नारी सौंदर्य के अंतर्गत उन्होंने नारी के बाह्य और अन्तः सौंदर्य को चित्रित किया है । नारी के बाह्य सौंदर्य के कुछ उदाहरण देखिए -

`झरना' की नायिका का उदात्त रूप चित्रण कवि ने निम्नलिखित प्रकार से किया है -

ये बंकिम भ्रू, युगल कुटिल कुन्तल घने,
नील नलिन से नेत्र चपल मद से भरे,
अरुण राग रंजित कोमल हिम खण्ड से-
सुन्दर गोल कपोल, सुढर नासा बनी ।
धवल स्मित जैसे शारद घन बीच में -
(जो कि कौमुदी से रंजित है हो रहा)
चपला-सी है ग्रीवा हँसी से बढ़ी ।
रूप जलधि में लोल लहरियाँ उठ रहीं ।

मुक्तागण हैं लिपटे कोमल कम्बु में ।
चंचल चितवन चमकीली है कर रही -
सृष्टि मात्र को, मानो पूरी स्वच्छता -
चीनांशुक बनकर लिपटी है अंग में ।
अस्तव्यस्त है वह भी ढँक ले कौन- सा -
अंग, न जिसमें कोई दृष्टि लगे उसे ।
सिंचे हुए वे सुमन सुरभि मकरन्द से -
पंख तितलियों के करते हैं व्यजन-से ।[१३]

`लहर` में प्रिय के रूप सौंदर्य का अंकन कवि ने बड़ी ही मनोज्ञता से किया है । मादकता के कारण उसके कपोलों पर लालिमा छाई हुई थी । ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रात:कालीन उषा ने अपनी माँग में लालिमा के रूप में सुहाग-सिन्दूर भर रखा हो ।

जिसके अरुण-कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया ~~हम~~ में ।
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में ।[१४]

इसी प्रकार कवि ने `कामायनी` की श्रद्धा ~~का~~ का सौंदर्य चित्रण भी प्रस्तुत किया है । श्रद्धा के मुख के समीप ही घुँघराले बाल कंधों पर लहरा रहे थे । ऐसा लगता था मानों नीले रंग के छोटे-छोटे बादल चन्द्रमा के निकट अमृत भरने आये हों तथा श्रद्धा के मुख पर मन्द मुस्कान ऐसी जान पड़ती थी जैसे लालिमापूर्ण नई- नई कोंपलों पर प्रभातकालीन सूर्य की एक उज्ज्वल किरण निद्रालु होकर विश्राम कर रही हो -

घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास ;

नील-घन-शावक से सुकुमार
    सुधा भरने को विधु के पास ।
और उस मुख पर वह मुसक्यान !
    रक्त किसलय पर ले विश्राम ;
अरुण की एक किरण अम्लान
    अधिक अलसाई हो अभिराम ।[१५]

इसी प्रकार `महाराणा का महत्त्व` में अकबर के सेनापति अबदुर्रहीम खानखाना की बेगम का रूप वर्णन देखिए -

कँपी सुराही कर की, झलकी वारूणी
देख ललाई स्वच्छ मुकुर कपोल में ;
खिसक गई डर से ज़रतारी ओढ़नी,
चकाचौंध-सी लगी विमल आलोक को,
पुच्छमर्दिता वेणी भी थर्रा उठी ।
आभूषण भी झन-झन कर बस रह गये ।[१६]

बाह्य रूप सौंदर्य वर्णन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नखशिख निरूपण है । यह परंपरा संस्कृत काल से चली आ रही है । प्रसाद जी ने नखशिख वर्णन तो नहीं किया परन्तु नखशिख जैसा ही रूप वर्णन प्रस्तुत किया है । `आँसू` और `कामायनी` में कहीं- कहीं इसी प्रकार का वर्णन मिलता है । नारी के बाह्य रूप सौंदर्य के उदाहरण देखिए -

मुख :

कवि प्रिय के चन्द्रमा जैसे मुख और उस पर फैली हुई केश राशि का चित्रण

अति सुन्दर ढंग से करता है। उस मुख और उस पर बिखरी हुई केश राशि देखकर लगता है मानों किसी ने उस चन्द्रमा को काली जंजीरों से बाँध दिया है। उन केशों में निकली हुई माँग हीरों से भरी हुई है जिसे देखकर लगता है साँप तो काला और मणि वाला है परन्तु उसका मुख न जाने क्यों हीरों से भरा हुआ है -

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से ?[१७]

एक अन्य उदाहरण में भी कवि ने मुख का सुन्दर चित्र अंकित किया है। काले- काले बालों से घिरा हुआ लालिमायुक्त मुख ऐसे प्रतीत होता है जैसे संध्या के समय आकाश में पश्चिम में घिरे हुए काले-काले बादलों को चीरता हुआ लाल रंग का सूर्य मंडल सुशोभित हो रहा हो।

आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घन श्याम ;
अरुण रवि मण्डल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।[१८]

नेत्र :

चक्षु सौंदर्य ने तो प्रसाद जी को सबसे अधिक आकर्षित किया है। प्रिय की काली आँखों में यौवन की मादकता भरी हुई है, जिसके कारण वह लाल-लाल दिखाई देती हैं। उन आँखों को देखकर ऐसा लगता है मानों किसी ने नीलम पत्थर की बनी हुई प्याली में लाल-लाल मदिरा भर दी हो -

काली आँखों में कितनी
यौवन के मद की लाली
मानिक- मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली । [१९]

एक अन्य उदाहरण में भी कवि ने प्रिय की आँखों का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है । प्रिय के नेत्रों में एक अजीब सी प्यास भरी हुई है । इस आँख रूपी समुद्र में काली- काली पुतलियाँ इधर- उधर घूम रही हैं जिन्हें देखकर लगता है मानों नीलम की नाव तैर रही है । नेत्रों की काजल की काली रेखा मानों काले जल वाले समुद्र का किनारा है ।

तिर रही अतृप्ति जलधि में
नीलम की नाव निराली
काला- पानी वेला सी
है अंजन- रेखा काली । [२०]

बरौनी :

बरौनी आँखों के सौंदर्य को और भी बढ़ा देती है । प्रिय की बरौनियाँ इतनी सुन्दर हैं कि इसके सौंदर्य को देखकर न जाने कितने हृदय घायल हो चुके हैं -

अंकित कर क्षितिज-पटी को
तूलिका बरौनी तेरी
कितने घायल हृदयों की
बन जाती चतुर चितेरी । [२१]

दाँत-नाक :

कवि लाल-लाल होठों, मोती के समान चमकते हुए दाँतों और तोते जैसी नासिका का आलंकारिक चित्रण बहुत ही सुन्दर शब्दों में करता है। कवि के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती क्योंकि मोती के दाने तो हंस चुगते हैं परन्तु यहाँ पर हंस के स्थान पर तोता कैसे आ बैठा है -

विद्रुम सीपी सम्पुट में
मोती के दाने कैसे ?
है हंस न, शुक यह, फिर क्यों
चुगने को मुक्ता ऐसे ? [२२]

कपोल :

हँसने के कारण कोमल कपोलों में पड़ने वाले गड्ढे और भौंहों में जो बाँकपन आता है उसका बहुत ही सजीव चित्रण कवि ने इन पंक्तियों में किया है -

कोमल कपोल पाली में
सीधी सादी स्मित- रेखा
जानेगा वही कुटिलता
जिसने भौं में बल देखा। [२३]

कान :

मुख के समीप कमल के दो कोमल पत्तों के समान कान के सौंदर्यका चित्रण भी कवि ने अत्यन्त रमणीय ढंग से किया है। कवि के मतानुसार जिस तरह कमल के पत्तों पर जल की बूंदें नहीं ठहरती उसी प्रकार इन कानों में व्यथित व्यक्ति की वेदना के स्वर भी ठहर नहीं पाते -

मुख-कमल समीप सजे थे
दो किसलय से पुरइन के
जल बिन्दु सदृश ठहरे कब
उन कानों में दुख किनके ? [२४]

वक्ष :

श्रद्धा के उन्नत उरोज अत्यन्त आकर्षक थे। मनु के हृदय में आलिंगन करके सुख प्राप्त करने की भावना अनायास ही जाग्रत हो उठती थी -

खुले मसृण भुज-मूलों से
वह आमन्त्रण था मिलता,
उन्नत वक्षों में आलिंगन
सुख लहरों- सा तिरता। [२५]

भुजाएं :

प्रसाद जी ने दोनों भुजाओं का चित्रण करते हुए कहीं पर कामदेव के धनुष की दुहरी डोरियाँ कहा है तो कहीं पर उन्हें हवा में मस्ती से झूमती लताएं तो कहीं पर सौंदर्य के सरोवर में उठती हुई नई- नई दो लहरें -

थी किस अनंग के धनु की
वह शिथिल शिंजिनी दुहरी
अलबेली बाहुलता या
तनु छवि-सर की नव लहरी ? [२६]

प्रसाद जी ने नारी के बाह्य सौंदर्य के साथ-साथ उसके आन्तरिक सौंदर्य के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। दया, ममता, करुणा, समर्पण, सेवा, त्याग, सहानुभूति आदि नारी के अन्त:गुण ही हैं।

श्रद्धा के चरित्र में प्रेम, त्याग, तपस्या आदि नारी सुलभ सभी उदात्त गुणों का समन्वय दिखायी देता है -

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास -रजत-नग पग तल में ;
पीयूष स्रोत-सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में । [२७]

पति के कल्याण तथा मंगल के लिए आत्म समर्पण ही नारीत्व है । आत्म-समर्पण ही नारी जाति की शोभा है । श्रद्धा की भी यही इच्छा है कि वह अपना सर्वस्व मनु के चरणों में न्यौछावर कर दे -

समर्पण लो सेवा का सार
सजल-संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद-तल में विगत विकार ।
दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास ;
हमारा हृदय-रत्न-निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास । [२८]

इस आत्म समर्पण में किसी भी प्रकार की स्वार्थ-भावना नहीं होती । ~~वह कभी भी यह आशा नहीं~~ वह कभी भी यह आशा नहीं करती कि जो बलिदान, त्याग वह अपने पति के लिए कर रही है वैसा ही त्याग और बलिदान उसके पति उसके लिए करें -

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग छलकता है ,
मैं दे दूँ और फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल फलकता है । [२९]

करुणा की भावना भी नारी में कूट-कूट कर भरी होती है । इसी करुणा के कारण ही श्रद्धा मनु को पशु वध करने से रोकती हुई कहती है -

चमड़े उनके आवरण रहें
ऊनों से मेरा चले काम ;
वे जीवित हों मांसल बनकर
हम अमृत दुहें, वे दुग्ध धाम ।[30]

इसके अतिरिक्त नारी में सहनशीलता और क्षमा करने की भावना भी होती है । मनु श्रद्धा को कहते हैं कि तुम स्वभाव से, बहुत ही उदार हो । सबके दुःख को अपना दुःख समझती हो और तुम सबको क्षमा करने वाली हो -

हे सर्वमंगले ! तुम महती,
सबका दुख अपने पर सहती ;
कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय में हो रहती ।[31]

नारी पति की विपत्ति सहचरी होती है । वह दुःख सुख में पति का साथ देती है । मनु श्रद्धा को गर्भावस्था में ही छोड़कर घर से चले जाते हैं । परन्तु श्रद्धा स्वप्न में मनु पर संकट आया देखकर तुरन्त मनु की खोज में निकल पड़ती है । सारस्वत प्रदेश में मनु घायल अवस्था में मिलते हैं वह बिना किसी क्रोध व घृणा के उनका उपचार करती है जब मनु श्रद्धा को वहाँ से चलने को कहते हैं तब श्रद्धा उन्हें उचित सलाह देती है -

ठहरो कुछ तो बल आने दो
लिवा चलूँगी तुरन्त तुम्हें ।[32]

प्रसाद जी ने पति-परायण नारी की सहज सेवा भावना और प्रेमाधिक्य की रमणीय झाँकी भी प्रस्तुत की है। नारी में इतना प्रेम भरा होता है कि उसके स्पर्शमात्र से ही शारीरिक पीडायें दूर हो जाती हैं -

इड़ा चकित, श्रद्धा आ बैठी
वह थी मनु को सहलाती,
अनुलेपन-सा मधुर स्पर्श था
व्यथा भला क्यों रह जाती ?
उस मूर्च्छित नीरवता में कुछ
हल्के से स्पन्दन आये,
आँखें खुलीं चार कोनों में
चार बिन्दु आकर छाये।[33]

नारी के हृदय में स्थित वात्सल्य भावना का भी चित्रण प्रसाद जी ने किया है। श्रद्धा मातृत्व पद प्राप्त करने के लिए उत्सुक है। वह नवागंतुक की मधुमयी कल्पना में डूब-डूब कर अपने प्रतीक्षा के दिनों को व्यतीत करती है -

झूले पर उसे झुलाऊँगी
दुलरा कर लूँगी बदन चूम ;
मेरी छाती से लिपटा इस
घाटी में लेगा सहज घूम।[34]

इस प्रकार से प्रसाद जी ने नारी के अन्तः और बाह्य सौंदर्य का सुन्दर और आकर्षक चित्रण किया है।

पुरुष सौंदर्य :

प्रसाद जी ने अपने काव्य में नारी सौंदर्य के अतिरिक्त पुरुष सौंदर्य

का चित्रण भी बड़ी सजीवता के साथ किया है। परन्तु पुरुष सौंदर्य का चित्रण उतने विस्तार से नहीं मिलता जितने विस्तार से नारी सौंदर्य का। उन्होंने पुरुषों के बाह्य और अन्त: दोनों ही रूपों पर दृष्टि डाली है। कामायनी के मनु को उदाहरण के तौर पर ले सकते हैं। उसमें मानव के सभी गुणों व अवगुणों का स्वरूप हमें देखने को मिलता है।

पुरुष के सुगठित तथा बलिष्ठ अंगों का वर्णन कवि इस प्रकार से करता है -

अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ,
ऊर्जस्वित था वीर्य्य अपार ;
स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार।
चिन्ता-कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत-प्रोत ;
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत।[३५]

वीर पुरुष के सौंदर्य का चित्रण कवि के शब्दों में देखिए -

युवक एक जो उनका नायक था वहाँ
राजपूत था ; उसका बदन बना रहा
जैसी भौंह थी चढ़ी ठीक वैसा कड़ा
चढ़ा धनुष था, वे जो आँखें लाल थीं
तलवारों का भावी रंग बता रहीं।[३६]

कवि ने पुरुष के बाह्य सौंदर्य के साथ-साथ उसके अन्त: सौन्दर्य का भी वर्णन किया है । पुरुष में साहस, वीरता, उदारता, परोपकार, अहिंसा, त्याग आदि गुण भी होते हैं, जो कि पुरुष सौंदर्य को और भी बढ़ा देते हैं । पुरुष में आत्मसम्मान की भावना बहुत तीव्र होती है । वह हमेशा आत्मसम्मान के लिए मर - मिटने को तैयार रहता है । पुरुष कभी भी किसी की दया के सहारे जीना पसन्द नहीं करता । इस प्रकार के जीवन से तो मृत्यु को ज्यादा बेहतर मानता है —

मरण जब दीन के जीवन से भला हो,
सहें अपमान क्यों फिर इस तरह हम ।
मनुज होकर जिया धिक्कार से जो,
कहेंगे पशु गया बीता उसे हम ।। [३७]

पुरुष को स्त्रियों का रक्षक माना जाता है । स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिए तो वह मर- मिटने को तैयार हो जाता है । स्त्रियों के प्रति उसके मन में एक विशेष प्रकार की आदर भावना होती है । महाराणा प्रताप का पुत्र अमरसिंह जब अकबर के सेनापति रहीम खानखाना की बेगम को बन्दी बना लेता है तो महाराणा प्रताप कह उठते हैं —

"किया किसने उसे
बन्दी ? स्त्री को क्षत्रिय देते दुख नहीं ।" [३८]

वह बेगम को उसके पति के पास भिजवा देते हैं तथा अपने सैनिकों को सन्देश देते हैं कि —

कभी न कोई क्षत्रिय आज से
अबला को दुख दें, चाहे हों शत्रु की ।
शत्रु हमारे यवन- उन्हीं से युद्ध है
यवनीगण से नहीं हमारा द्वेष है । [३९]

इन सब गुणों के अतिरिक्त पुरुष में कुछ अवगुण भी होते हैं। कवि ने उनका भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। पुरुष में अधिकार लिप्सा की भावना बहुत ही तीव्र होती है। वह अपने प्रेम पर एकाधिकार चाहता है। उसे यह कतई पसन्द नहीं है कि उसका प्रेम किसी और को प्राप्त हो। चाहे उसका अपना पुत्र ही क्यों न हो।'कामायनी' में मनु को जब ज्ञात होता है कि उनके घर में नवजात शिशु आने वाला है तो उनका हृदय जलने लगता है वह श्रद्धा को कहते हैं भावी सन्तान के लिए तुम्हारे हृदय में अभी से इतना ममत्व उमड़ रहा है। तुम मेरी उपेक्षा कर रही हो। मुझे मेरा वह प्रेम चाहिए, जिस पर एकमात्र मेरा ही अधिकार हो -

यह जलन नहीं सह सकता मैं
चाहिए मुझे मेरा ममत्व ;
इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्व।[४०]

मनु श्रद्धा को गर्भावस्था में छोड़कर सारस्वत नगर पहुँचते हैं। उनकी अधिकार लिप्सा की भावना अभी भी कम नहीं होती। वे वहाँ की रानी इड़ा पर भी अधिकार पाने के इच्छुक हैं -

इड़े! मुझे वह वस्तु चाहिए जो मैं चाहूँ,
तुम पर हो अधिकार, प्रजापति न तो वृथा हूँ।[४१]

पुरुष पूर्णतया स्वतंत्रतापूर्ण जीवन व्यतीत करना पसंद करता है। वह अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं चाहता।

इस प्रकार से प्रसाद जी ने पुरुष के गुणों के साथ-साथ उसकी कुछ

स्वाभाविक प्रवृत्तियों का भी चित्रण किया है जिनका पुरुष के जीवन में अपना ही महत्त्व है।

बाल सौंदर्य :

नारी और पुरुष सौंदर्य के साथ-साथ बाल सौंदर्य का भी विशेष महत्त्व है। प्रसाद जी तो सौंदर्य प्रिय कवि हैं। उन्होंने नारी और पुरुष सौंदर्य के चित्रण के साथ-साथ बाल सौंदर्य के भी रमणीय चित्र अंकित किए हैं। डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित का मत है -'प्रसाद साहित्य में जहाँ 'नारी निसर्ग सुन्दरता' से इतराती दिखाई देती है, वहीं 'शिशु की उर्मिल निर्मलता' भी दलकती प्रतीत होती है।४२

प्रसाद जी ने अपने काव्य में बालकों की विभिन्न क्रीड़ाओं का चित्रण किया है। बच्चे पल में ही रूठ जाते हैं और पल में ही मान जाते हैं। अपनी माँ से उनका रूठना और मानना तो चलता ही रहता है -

'मैं रूठूँ माँ और मना तू, कितनी अच्छी बात कही।
ले मैं सोता हूँ अब जाकर, बोलूँगा मैं आज नहीं,
पके फलों से पेट भरा है नींद नहीं खुलने वाली।'४३

बच्चे अपनी माँ को एक पल के लिए भी आँखों से ओझल नहीं होने देते। संध्या के समय अपने मित्रों के साथ खेलने के पश्चात माँ-माँ की ध्वनि करते हुए घर की ओर दौड़ते हैं और माँ का हृदय भी अपने लाडले की पुकार सुनकर उल्लास से भर उठता है तथा वह भी अपने शिशु को अपनी बाँहों में उठाने के लिए व्याकुल हो उठती है। इस प्रकार का चित्रण प्रसाद जी ने 'कामायनी' में किया है। श्रद्धा का पुत्र कुमार भी जब जंगल से खेलकर घर वापिस लौटता है तो

माँ- माँ करता हुआ दौड़ा चला आ रहा है। श्रद्धा की सूनी कुटिया आनन्द एवं उल्लास से भर उठती है। श्रद्धा भी वात्सल्यपूर्ण हृदय में उठने वाली अत्यधिक उमंग के साथ अपने पुत्र को बाँहों में लेने के लिए उठकर अपने पुत्र की ओर दौड़ पड़ती है और धूल से सनी हुई बाँहों से वह अपनी माँ से लिपट जाता है। कितना सुन्दर चित्रण कवि ने किया है -

> 'माँ-' फिर एक किलक दूरागत, गूँज उठी कुटिया सूनी
> माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी।
> लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाँहें आकर लिपट गयीं,
> निशा -तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी।[४४]

'कानन-कुसुम' में तो 'बाल क्रीड़ा' शीर्षक कविता ही है जिसमें बालकों की विभिन्न क्रीड़ाओं का अंकन किया गया है।

बालकों का हृदय बहुत ही स्वच्छ होता है। उनके लिए फूल और काँटों में कोई भेदभाव नहीं होता। बच्चा जब काँटों को देखता है तो वह उसे छूने के लिए उसकी ओर दौड़ता है। ऐसा करने में उसके कुछ विशेष आनन्द मिलता है -

> उपवन के फल-फूल तुम्हारा मार्ग देखते
> काँटे ऊँचे नहीं तुम्हें हैं एक लेखते
> मिलने को उनसे तुम दौड़े ही जाते हो
> इसमें कुछ आनन्द अनोखा पा जाते हो।[४५]

बच्चों की हँसी में तो एक विशेष प्रकार का जादू होता है। वह अपनी हँसी से तो किसी को भी अपने वश में कर लेते हैं -

माली बूढ़ा बकबक किया करता है, कुछ नहीं
जब तुमने कुछ भी हंस दिया, क्रोध आदि सब कुछ नहीं।[४६]

बच्चों में भेदभाव की भावना नहीं होती। उनके लिए अमीर-गरीब, राजा-रंक और छूत-अछूत सब समान हैं। बच्चे के हृदय का कितना सुन्दर चित्र प्रसाद जी ने प्रस्तुत किया है —

राजा हो या रंक एक ही - सा तुमको है।[४७]

इस प्रकार से प्रसाद जी ने बाल-सौन्दर्य का चित्रण भी बड़ी ही मनोज्ञता से किया है।

(२) प्रकृति सौन्दर्य :

इस संसार में प्रकृति- सौंदर्य का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत रहा है। मानव और प्रकृति का शाश्वत सम्बंध है। मानव ने सबसे पहले प्रकृति की क्रोड़ में ही आंखें खोली थी और क्रीड़ा करता हुआ वह बड़ा हुआ और इसी के सहयोग से क्रियाशील बना। प्रकृति ने मनुष्य के जीवन की बाह्य आवश्यकताओं की निरन्तर पूर्ति की है साथ ही मनुष्य की आन्तरिक अनुभूतियों को भी प्रभावित किया है। प्रकृति हमारी माता है। उसकी जलवायु से हमारा शरीर पुष्ट हुआ है। उससे हम भाग नहीं सकते। मौन रहते हुए भी वह हमें सत्वर सुख देती है।[४८] रविन्द्रनाथ टैगोर भी प्रकृति को मनुष्य के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार 'जब मनुष्य स्वयं को प्रकृति के प्राणपद और वरद स्पर्श से दूर कर लेता है और जीवन के आरोग्य के लिए अपने आविष्कारों का आलम्बन लेता है तो वह उन्मादी हो जाता है। स्वयं को खंड-खंड कर लेता है और अपने ही जीवन रस का शोषण करता है। प्रकृति के विशाल आंचल का अवलम्ब छोड़कर उसकी दीनता नग्न और निर्लज्ज बन जाती है। प्रकृति के आवरण में वह सादगी का

रूप धारण किए रहती है।`[४९] प्रकृति के विराट सौंदर्य पर मुग्ध होकर कवि काव्य-रचना करता है, उसके सौंदर्य को अपनी कल्पना और अनुभूति का विषय बनाता है। यह अनुभूति ~~का-कि-~~ ही अभिव्यक्ति का विषय बनकर कविता का रस धारण करती है।[५०]

प्रसाद प्रारंभ से ही प्रकृति के प्रेमी रहे हैं। अपने काव्य में प्रकृति के सौंदर्य को चित्रित करने का अपूर्व प्रयास प्रसाद जी ने किया है। `चित्राधार` में प्रसाद जी की प्रकृति सौंदर्य से सम्बंधित धारणा प्राप्त होती है। `प्रकृति सौंदर्य ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह है, अथवा उस बड़े शिल्पकार के शिल्प का एक छोटा-सा नमूना है या इसी को अद्भुत रस की जन्मदातृ कहना चाहिए। सम्पूर्ण रूप से वर्णन करना तो मानो ईश्वर के गुण की समालोचना करना है।`[५१] रहस्यमयी प्रकृति के विविध रूप हैं और मनुष्य इतना योग्य और बुद्धि सम्पन्न नहीं है कि प्रकृति का पूर्ण वर्णन कर सके।[५२] प्रसाद जी के मत से `प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब है।`[५३] उन्होंने प्रकृति को `अद्भुत रस की जन्मदात्री`, `अदभुत दृश्य`, `अद्भुत छटा`, `अदभुत रचना`, `आश्चर्य`, `अदभुत-बनाव`, `अदभुत स्थिति`, `विचित्र प्रभाव` आदि कहकर सम्बोधित किया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रसाद जी ही पहले कवि हैं जो अपने काव्य में प्रकृति की एक ऐसी गूढ़ गंभीर व रसमयी भाषा में बोलने लगे हैं जो हिन्दी में प्रायः अपूर्ण है।[५४] प्रसाद जी का व्यक्तित्व, उनका साहित्य और उनकी जीवन व्यापी आनन्द-साधना तीनों प्रकृति के माध्यम से ही परिपक्व हुए हैं। प्रसाद जी से पहले हिन्दी साहित्य में जितने भी परम्परागत उपयोग होते थे, उनसे कुछ भिन्न या नवीन रूपों में प्रकृति का उपयोग `प्रसाद` साहित्य में हुआ है।[५५] आचार्य बाजपेयी जी के अनुसार- `साहित्य इस बात का साक्षी है कि उन्होंने

ही सर्वप्रथम उदय होती हुई ताराओं और खिलती हुई कलियों का सौंदर्य देखा और पहचाना, कारण यही है कि वे स्वयं हिन्दी काव्याकाश के उदय होते हुए नक्षत्र और खिलते हुए पुष्प थे। महाराणा प्रताप और अहल्याबाई के नामों में ही सब कुछ नहीं है, इस विराट विश्व में उनके बाहर भी कुछ है, यह बात हिंदी में प्रसाद जी ने सबसे पहले हमें समझाने को दी।[५६] इसी प्रकार उपाध्याय जी की भी मान्यता है कि-`प्रकृति में सौंदर्य और सत्य देखने की छायावादी प्रवृत्ति सर्वप्रथम सैद्धांतिक आधार के साथ प्रसाद जी में ही दिखायी पड़ती है।`[५७]

प्रसाद जी ने `चित्राधार` से लेकर `कामायनी` तक प्रकृति के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। `चित्राधार` के पराग खण्ड में `शारदीय शोभा`, `रसाल`, `प्रभात-कुसुम`, `शरद पूर्णिमा`, `संध्या तारा`, `चन्द्रोदय`, `इन्द्रधनुष`, `रसाल मंजरी`, `वर्षा में नदी कूल`, `नीरद`, `उद्यान लता`, आदि कविताएँ प्रकृति से सम्बंधित हैं। `कानन-कुसुम` में भी प्रकृति से सम्बंधित अनेक कविताएँ हैं जैसे- `नव बसन्त`, `ग्रीष्म का मध्यान्ह`, `जलद-आवाहन`, `रजनी गंधा`, `सरोज कोकिल`, `दलित-कुमुदिनी`, `निशीथ-नदी`, `सज्जन` आदि कवितायें। `करुणालय` में प्रकृति चित्रण बहुत कम हुआ है। `महाराणा का महत्त्व` में भी प्रकृति से सम्बंधित सुन्दर गीत मिलते हैं। `झरना` में भी प्रकृति से सम्बंधित अनेक कवितायें हैं जैसे- `झरना`, `प्रथम प्रभात`, `बसंत`, `किरण`, `झील में` आदि। `कामायनी` में भी प्रकृति का सुन्दर वर्णन किया है। उसका आरम्भ प्रकृति के अंक में होता है और उसकी समाप्ति भी प्रकृति की ही भूमिका में होती है। उनके नाटक और उपन्यास भी प्रकृति सौंदर्य से ओतप्रोत हैं। प्रसाद जी ने अपने काव्य में प्रकृति के विभिन्न अंगों का वर्णन किया है।

पर्वत :

पर्वत प्रदेश का सौंदर्य प्रसाद जी को बहुत ही प्रिय रहा है। पर्वतिय

प्रकृति के अन्तर्गत हिमालय इनका प्रमुख विषय रहा है। उन्होंने इसे `विश्व कल्पना सा विराट`, `मणि रत्नों का निधान`, `लता कलित शुचि सानु शरीर`, `नीरवता की विमल विभूति`, `विश्व मौन महत्व का प्रतिनिधि` आदि कई विशेषण दिये हैं।

विश्व-कल्पना सा ऊँचा वह
सुख शीतल सन्तोष निदान ;
और डूबती सी अवला का
अवलम्बन मणि रत्न निधान।
अचल हिमालय का शोभनतम
लता कलित शुचि सानु शरीर ;
निद्रा में सुख स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीर।[५८]

`स्कन्दगुप्त` में हिमालय पर्वत के सौंदर्य का चित्रण देखिए -

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।
जगे हम, लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम-पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक।[५९]

सागर और सरिता :

प्रसाद जी ने सागर और सरिता के भी सुन्दर चित्र अंकित किए हैं। उन्होंने सागर की गहराईयों उसके विस्तार और उसकी तरंगों का अंकन किया है। इस संसार से छुटकारा पाने के लिए कवि जिस देशकाल का स्मरण करता है

उसमें सागर सर्वोपरि है-

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे धीरे ।
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी-
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे । [६०]

कवि ने उस सागर का वर्णन किया है जिसमें लहरें बार-बार उठती - गिरती कुल-कुल की ध्वनि कर रही हैं -

लहरों में यह क्रीड़ा चंचल,
सागर का उद्वेलित अंचल
है पोंछ रहा आँखें छलछल,
किसने यह चोट लगाई है ? [६१]

सरिता का सौंदर्य द्रष्टव्य है -

करती सरस्वती मधुर नाद
बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव सी अप्रमाद
सब उपल उपेक्षित पड़े रहे, जैसे वे निष्ठुर जड़ विषाद
वह थी प्रसन्नता की धारा जिसमें था केवल मधुर गान । [६२]

सरिता की कुप-कुप ध्वनि का सुन्दर चित्रण देखिए -

सरिता का वह एकान्त कूल,
था पवन हिंडोले रहा झूल ;

धीरे-धीरे लहरों का दल,
तट से टकरा होता ओझल,
छप-छप का होता शब्द विरल,
थर थर कँप रहती दीप्ति तरल ।[६३]

लहर :

लहर के मधुर-कोमल रूप का वर्णन इस प्रकार से किया गया है -

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर !
करुणा की नव अँगराई-सी,
मलयानिल की परछाईं- सी,
इस सूखे तट पर छिटक छहर !
शीतल कोमल चिर कम्पन-सी,
दुर्ललित हठीले बचपन-सी,
तू लौट कहाँ जाती है री-
यह खेल खेल ले ठहर-ठहर ![६४]

झरना :

मधुर है स्रोत मधुर है लहरी ।
न है उत्पात, छटा है छहरी ।।
मनोहर झरना ।[६५]

चारों ओर लताओं से आच्छादित हरे-हरे कुंजों की छाया में झर-झर की मधुर ध्वनि करते हुए अबाध गति से निरंतर बहते रहने वाले झरने का कितना सुन्दर चित्रण प्रसाद जी ने किया है -

निर्झर -सा झिर-झिर करता
माधवी-कुंज छाया में
चेतना बही जाती थी
हो मन्त्र -मुग्ध माया में ।[६६]

उषा :

प्रकृति के उपादानों में प्रसाद जी को उषा बहुत ही प्रिय है । उन्होंने इसके मनोरम चित्र खींचे हैं जैसे मधुबाला[६७], भैरवी[६८], याचिका[६६], के रूप में प्रस्तुत किया है -

'कामायनी' में उषाकाल का वर्णन देखिए -

उषा सुनहले तीर बरसती
जयलक्ष्मी सी उदित हुई ;
उधर पराजित कालरात्रि भी
जल में अन्तर्निहित हुई ।[७०]

प्रसाद जी ने उषा को पनिहारिन रूप में भी चित्रित किया है -

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही -
तारा-घट उषा नागरी ।
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई-
मधु मुकुल नवल रस गागरी ।[७१]

यहाँ पर कवि कल्पना करता है जैसे उषा नागरी ताराघट को अंबर में डुबो रही है। पक्षियों की कुलकुलाहट उस डूबते घट से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि है एवं डोलते हुए किसलय उषा पनिहारिन के हिलते हुए अंचल की व्यंजना करते हैं।

साथ ही कवि ने उषा का शिथिल एवं परिश्रान्त रूप भी प्रस्तुत किया है -

कहता दिगन्त से मलय पवन,
प्राची की लाज भरी चितवन-
है रात घूम आई मधुबन,
यह आलस की अँगराई है।[७२]

उषा का एक और सुन्दर चित्र देखिए -

उषा की सजल गुलाली जो
घुलती है नीले अम्बर में;
वह क्या है? क्या तुम देख रहे
वर्णों के मेघाडम्बर में?[७३]

प्रभात :

उषा जब धीरे-धीरे विलीन होती है उसके साथ धीरे-धीरे प्रभात का आगमन होता है। कवि ने उषा के समान ही प्रभात के सुन्दर चित्र अंकित किए हैं -

नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग;
सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।[७४]

संध्या :

प्रसाद जी को संध्या वेला विशेष प्रिय है। संध्या का सौंदर्य अवलोकनीय है -

संध्या-घनमाला की सुन्दर
ओढ़े रंग-बिरंगी छींट,
गगन-चुम्बिनी शैल-श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार किरीट।[७५]

रात्रि :

संध्या के बाद रात्रि का आगमन होता है। चारों तरफ कालिमा ही कालिमा दिखायी पड़ती है। 'कामायनी' में इसके सुन्दर चित्र मिलते हैं -

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोने से-
आती चूम-चूम चल जाती
पढ़ी हुई किस टोने से।[७६]

सांय-सांय करती हुई नीरव रजनी का कितना सच्चा वर्णन प्रसाद जी ने किया है -

किस दिगन्त रेखा में इतनी
संचित कर सिसकी-सी साँस,
यों समीर मिस हाँफ रही-सी
चली जा रही किसके पास।[७७]

रात्रि को नायिका के रूप में भी प्रस्तुत किया है -

घूँघट उठा देख मुसक्याती
किसे ठिठकती-सी आती ;
विजन गगन में किसी भूल- सी
किसको स्मृति पथ में लाती ।[७८]

कवि को रजनी थकी हुई प्रतीत होती है उसके पसीने से समस्त आकाश भीगा हुआ प्रतीत होता है -

थक जाती थी सुख रजनी
मुख-चन्द्र हृदय में होता
श्रम-सीकर सदृश नखत से
अम्बर पट भींगा होता ।[७६]

चाँदनी रात का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है -

अंचल लटकाती निशीथिनी
अपना ज्योत्सना-शाली,
जिसकी छाया में सुख पावे
सृष्टि वेदना वाली ।
उच्च शैल शिखरों पर हँसती
प्रकृति चंचला बाला,
धवल हँसी बिखराती अपनी
फैला मधुर उजाला ।[८०]

चाँदनी रात के साथ-साथ कवि ने चन्द्रहीन रात के भी सुन्दर चित्र अंकित किए हैं -

वह चन्द्रहीन थी एक रात,
जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात;

उजले उजले तारक झलमल,
प्रतिबिंबित सरिता वक्ष स्थल,
धारा बह जाती बिम्ब अटल,
खुलता था धीरे पवन पटल ;
चुपचाप खड़ी थी वृक्ष पाँत,
सुनती जैसे कुछ निजी बात ।[८१]

चन्द्रमा :

चन्द्रमा का भी विशेष महत्त्व है । प्रसाद जी ने चन्द्रमा को 'रजत कुसुम'[८२] 'वरुण का ज्योति भरा चलचक्र'[८३] आदि संज्ञाएं दी हैं । इसका अति सुन्दर चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है -

क्लान्त तारकागण की मधप-मण्डली,
नेत्र निमीलन करती है फिर खोलती ।
रिक्त चषक -सा चन्द्र लुढ़ककर है गिरा,
रजनी के आपानक का अब अंत है ।[८४]

कवि रात्रि में तारक मण्डल से युक्त चन्द्रिका का मानवीकरण के द्वारा वर्णन इस प्रकार करता है -

तारा-हीरक-हार पहन कर, चंद्रमुख -
दिखलाती, उतरी आती थी चाँदनी
(शाही महलों के ऊँचे मीनार से)
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से ।[८५]

तारा :

रात्रि में आकाश में चमकते हुए तारों की अपनी ही शोभा होती है। तारा का अलौकिक सौंदर्य द्रष्टव्य है -

तम के सुन्दरतम रहस्य, हे
कान्ति किरण रंजित तारा !
व्यथित विश्व के सात्विक शीतल
बिन्दु, भरे नव रस सारा। [८६]

सूर्य :

सूर्य की भी अपनी ही शोभा होती है। प्रसाद जी ने सूर्योदय और सूर्यास्त के भी सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। अस्तगामी सूर्य की करुण दशा का चित्रण इस प्रकार से किया है -

गिर रहा निस्तेज गोलक जलधि में असहाय ;
घन पटल में डूबता था किरण का समुदाय।
कर्म का अवसाद दिन से कर रहा छल छन्द ;
मधुकरी का सुरस संचय हो चला अब बन्द।
उठ रही थी कालिमा धूसर क्षितिज से दीन ;
भेंटता अंतिम अरुण आलोक-वैभव - हीन।
यह दरिद्र मिलन रहा रच एक करुणा लोक ;
शोभ भर निर्जन निलय से बिछुड़ते थे कोक। [८७]

सूर्योदय का चित्र देखिए -

प्राची में फैला मधुर राग
जिसके मंडल में एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग

जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग
आलोक रश्मि से बुने उषा अंचल में आन्दोलन अमन्द
करता प्रभात का मधुर पवन सब ओर बिखरने को मरन्द ।[८८]

किरण :

सूर्य के उदय होते ही सारा संसार किरणों से आलोकित हो उठता है । प्रात:कालीन किरण के सौंदर्य को कवि इस प्रकार से प्रस्तुत करता है -

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग ।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल-
वेदना-दूती सी तुम कौन ?[८९]

कवि को किरण अज्ञात -प्रियतम के अनुराग-रंग से रंगी हुई प्रतीत होती है ।

विहग बालिका के रूप में भी किरण का सौंदर्य चित्र प्रसाद जी ने अंकित किया है -

नील गगन में उड़ती-उड़ती विहग-बालिका सी किरनें,
स्वप्न लोक को चलीं थकी-सी नींद सेज पर जा गिरने।[९०]

ऋतु-सौंदर्य :

प्रसाद जी ने अपने काव्य में विभिन्न ऋतुओं का वर्णन किया है ।

शरद ऋतु :

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से ;
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से ।[६५]

यहाँ वर्षा से प्रलय का अन्तिम चरण और शरद को सृष्टि का प्रथम उन्मेष माना है ।

ग्रीष्म ऋतु :

कवि ने ग्रीष्म ऋतु के भयंकर सौंदर्य का भी वर्णन किया है -

निर्जन कानन में तरुवर जो खड़े प्रेत-से रहते हैं
डाल हिलाकर हाथों से वे जीव पकड़ना चाहते हैं
देखो, वंचक वृक्ष शाल्मली का यह महा-भयावह कैसा है
आतप-भीत विहंगम कुल का क्रन्दन इस पर कैसा है
लू के झोंके लगने से जब डाल-सहित यह हिलता है
कुम्भकर्ण-सा कोटर-मुख से अगणित जीव उगलता है
हरे-हरे पत्ते वृक्षों के तापित को मुरझाते हैं
देखादेखी सूख-सूखकर पृथ्वी पर गिर जाते हैं
धूल उड़ाता प्रबल प्रभंजन उनको साथ उड़ाता है
अपने खड़खड़ शब्दों को भी उनके साथ बढ़ाता है ।[६६]

प्रसाद जी ने जलती दोपहरी और झुलसाती लू का भी वर्णन किया है -

वह थी दुपहरी,
लू से झुलसाने वाली, प्यास से जलाने वाली

थके सो रहे थे तरूछाया में दोनों हम,
तुर्कों का एक दल आया झंझावात-सा ।[६७]

पशु पक्षियों का चित्रण :

प्रसाद जी ने अपने काव्य में पशु-पक्षियों को भी चित्रित किया है ।

कोयल :

कोकिल-प्रसाद जी को बहुत ही प्रिय है । वह इसे सौंदर्य का प्रतीक मानते हैं । कोकिल को प्रसाद जी ने `बसंत का दूत` कहा है ।

क्या तुम्हें देखकर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी !
उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखें खोली थीं ।[६८]

पपीहा :

डाल पर बोलता है पपीहा-
`हो भला प्राणधन, तुम कहीं? -हा !
आ मिलो हो जहाँ ।
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?[६६]

भ्रमरा :

शतशत मधुपों का गुंजन ;
भर उठा मनोहर नभ में ।[१००]

इसके अतिरिक्त प्रसाद जी ने विभिन्न प्रकार के फूलों का भी वर्णन किया है । फूलों में प्रसाद जी को जवाकुसुम, कमल, मालती, मुकुल, रजनीगंधा, चमेली, माधवी, गुलाब, शिरीष, मल्लिका विशेष प्रिय हैं ।

माधवी :

आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गन्ध ;
पवन के घन घिरे पड़ते थे बने मधु अन्ध ।। [१०१]

अकबर
गुलाब :

अकबर के साम्राज्य भवन के द्वार से
निकल रही थी लपट सुगन्ध सनी हुई
बसरा के 'गुलाब' से वासित हो रहा,
भारत का सुख शीत पवन, जैसे कहीं । [१०२]

कमल :

शत- शत दलों की
मुद्रित मधुर गन्ध भीनी-भीनी रोम में
बहाती लावण्य धारा । [१०३]

शिरीष :

कुसुमाकर रजनी के जब
पिछले पहरों में खिलता
उस मृदुल शिरीष सुमन-सा
मैं प्रात धूल में मिलता । [१०४]

रजनीगंधा :

बेला विभ्रम की बीत चली
रजनीगंधा की कली खिली -
अब सांध्य-मलय आकुलित
दुकूल-कलित हो-यों छिपते हो क्यों ? [१०५]

मालती :

रस जलकन मालती-मुकुल से-
जो मदमाते गन्ध विधुर थे ।[१०६]

प्रसाद जी ने प्रकृति के कोमल रूप का जितना सुन्दर चित्रण किया है उतना ही उसके भयानक एवं कठोर रूप का भी चित्रण किया है ।

प्रलय का वर्णन देखिए -

हा-हा-कार हुआ क्रन्दन मय
कठिन कुलिश होते थे चूर ;
हुए दिगन्ध बधिर, भीषण रव
बार-बार होता था क्रूर ।
दिग्दाहों से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के ।
सघन गगन में भीम प्रकम्पन,
झंझा के चलते झटके ।
अन्धकार में मलिन मित्र की
धुँधली आभा लीन हुई ;
वरूण व्यस्त थे, घनी कालिमा
स्तर-स्तर जमती पीन हुई ।
पंचभूत का भैरव मिश्रण,
शम्पाओं के शकल-निपात,
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ
खोज रहीं ज्यों खोया प्रात ।[१०७]

लहरों के भीषण रूप का चित्रण द्रष्टव्य है -

उधर गरजतीं सिन्धु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों-सी ;
चली आ रही फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों-सी ।[१०८]

इस प्रकार प्रसाद जी का प्रकृति चित्रण अद्वितीय है । उन्होंने वैविध्यपूर्ण प्रकृति के रमणीय और मोहक स्वरूप का जितना सुन्दर चित्रण किया है उतना ही उसके भयानक और उग्र रूप का भी चित्रण किया है ।

वस्तुगत सौंदर्य :

मानव द्वारा निर्मित सभी पदार्थों का भी अपना ही सौंदर्य होता है । प्रकृति द्वारा प्रदान की गई सामग्री जैसे- चूना, पत्थर, मिट्टी, लकड़ी एवं विभिन्न धातुओं की सहायता से मनुष्य विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुओं का निर्माण करता है । कुतुबमीनार, जन्तर-मन्तर, ताजमहल, अजन्ता-एलोरा की गुफाएँ, कश्मीर के निशान्त और शालिमार बाग इत्यादि वस्तुगत सौंदर्य के उदाहरण हैं ।

प्रसाद जी ने अपने काव्य में वस्तुगत सौंदर्य का विस्तार से वर्णन नहीं किया । उनकी वृत्ति मानवीय एवं प्राकृतिक सौंदर्य में ही अधिक रमी है । प्रसाद जी ने `चित्राधार` में वस्तुगत सौंदर्य से सम्बंधित धारणा व्यक्त की है । उनके अनुसार-`वस्तुगत-सौंदर्य केवल सौंदर्य-निर्माण अथवा मात्र कला-हेतु कला नहीं होती । उसमें सौंदर्य के साथ ही कुछ उपभोग क्षमता भी होनी चाहिए । वास्तव में वास्तु, मूर्ति, शिल्प आदि कलाओं का उपभोग से गहरा सम्बंध है । केवल सुन्दर मात्र होने से वे उसे स्वीकार नहीं करते जब तक कि उसका कोई उपयोग न हो । यद्यपि उसका सुन्दर होना आवश्यक है अन्यथा वह कला की श्रेणी से च्युत हो जायेगी ।`[१०९]

प्रसाद जी ने वस्तुगत सौंदर्य के अंतर्गत नगर, भवन, कुटिया, उद्यान इत्यादि का वर्णन किया है।

'प्रेमपथिक' में मानव कृत कुटिया के सौंदर्य का वर्णन प्रसाद जी ने इस प्रकार से किया है -

सुन्दर कुटिया वह कैसी है रम्य तटी में सरिता के
शांत तपस्वी -सी बल्लरियों के झुरमुट से घिरी हुई।
फैल रहे थे कोमल वीरूध हरे-हरे तृण चारों ओर
जैसे किसी दुर्ग की खाई में श्यामल जल भरा हुआ
स्वच्छ मार्ग था रूका जहाँ था हरी मालती का तोरण
घिरी वहाँ थी नई चमेली की टट्टी प्राकार बनी
कानन के पत्तों, कोमल तिनकों की उस पर छाया थी
मृग छाल, कौशेय, कमण्डल वल्कल से ही सजी रही
शान्त निवास बनी थी कुटिया और रहा जिसके आगे
नवल मालती-कुंज बना दालान, अनोखे सज-धज का। [११०]

श्रद्धा एक सुन्दर कुटिया का निर्माण करती है। सूखे डण्ठल इकट्ठे करके उस कुटिया पर छप्पर डालती है। कुटिया पर कोमल लताओं की डालियों से एक सुन्दर कुंज भी बन जाता है -

उस गुफा समीप पुआलों की
छाजन छोटी-सी शान्ति-पुंज;
कोमल लतिकाओं की डाले
मिल सघन बनाती जहाँ कुंज। [१११]

उस कुटिया की दीवारें पत्तियों की बनी थी और दीवारें काटकर सुन्दर

झरोखें भी बनाये गये थे जिससे वायु आसानी से अन्दर आ जा सके -

थे वातायन भी कटे हुए
प्राचीर पर्णमय रचित शुभ्र ;
आवें क्षण भर तो चले जायँ
रुक जायँ कहीं न समीर, अभ्र ।[११२]

कुटिया में बेंत का एक सुन्दर झूला भी था तथा फर्श पर फूलों का चिकना सुगंधित पराग बिछा था -

उसमें था झूला पड़ा हुआ
बेंत की लता का सुरुचिपूर्ण ;
बिछ रहा धरातल पर चिकना
सुमनों का कोमल सुरभि चूर्ण ।[११३]

प्रसाद जी ने नगर का भी सुन्दर वर्णन किया है । सारस्वत नगर इसका सुन्दर उदाहरण है । इस नगर की समस्त जनता मनु को सहयोग देती है । बड़े-बड़े मजबूत परकोटों के बीच विशाल भवन बनाए गए हैं जिसके अनेक द्वार हैं । विभिन्न ऋतुओं से बचने के लिए सभी साधन वहाँ वर्तमान हैं । वहाँ पर कृषि भी होने लगी है । किसान प्रसन्न होकर हल चलाते हैं । अत्यन्त परिश्रम करने के कारण उनके शरीर से पसीने की बूँदें टपक रही हैं -

मनु का नगर बसा है सुन्दर सहयोगी है सभी बने ;
दृढ़ प्राचीरों में मन्दिर के द्वार दिखाई पड़े घने ;
वर्षा धूप शिशिर में छाया के साधन सम्पन्न हुए,
खेतों में हैं कृषक-चलाते हल प्रमुदित श्रम-स्वेद सने ।।[११४]

सारस्वत नगर में कहीं तो सोने-चाँदी को गलाकर आभूषण बनाये जा रहे हैं तो कहीं पर लोहे को गला कर नये अस्त्रों का निर्माण किया जा रहा है तो कहीं पर वीर पुरुष शिकार करके मृग चर्म, बाघ चर्म आदि उपहार रूप में ला रहे हैं। कहीं पर मालिनें अध खिली फूलों की कलियों को चुन रही हैं -

उधर धातु गलते, बनते हैं आभूषण औ अस्त्र नये,
कहीं साहसी ले आते हैं मृगया के उपहार नये ;
पुष्पलावियाँ चुनती हैं बन-कुसुमों की अध-विकच कली,
गन्ध चूर्ण था लोध्र कुसुम रज, जुटे नवीन प्रसाधन ये। ११५

एक ओर लोहारों के हथौड़ों से कर्कशता से भरी तीव्र ध्वनि आती है तो दूसरी ओर रमणियों के कंठ से निकली हुई मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है। सभी लोग अपना-अपना वर्ग बनाकर अपना-अपना काम करते हैं जिसके कारण नगर की शोभा और भी बढ़ जाती है।

घन के आघातों से होती जो प्रचण्ड ध्वनि रोष भरी,
तो रमणी के मधुर कण्ठ से हृदय मूर्च्छना उधर ढरी ;
अपने वर्ग बनाकर श्रम का करते सभी उपाय वहाँ,
उनकी मिलित-प्रयत्न-प्रथा से पुर की श्री दिखती निखरी। ११६

सारस्वत नगर के सभी प्राणियों ने अथक परिश्रम से स्थान तथा समय को छोटा बना दिया है। उन्होंने ऐसे-ऐसे आविष्कार किए जिसके द्वारा अति शीघ्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा जा सकता है। सभी ऐसी सामग्रियों को एकत्रित करने में लगे हुए हैं जिसके द्वारा उनका जन जीवन सुखी हो सके।

सारस्वत नगर में ऊँचे-ऊँचे खंभों पर बड़े-बड़े भवन बने हुए हैं। धूप के धुएँ ने भवनों में सुगंधि फैलाई हुई है और उनमें तीव्र प्रकाश की ज्योति भी जल रही है -

ऊँचे स्तम्भों पर वलभी युत बने रम्य प्रासाद वहाँ,
धूप धूम सुरभित गृह, जिनमें थी आलोक-शिखा जलती। [११७]

विशाल भवनों पर सोने के सुन्दर कलश भी लगे हुए हैं। भवनों के साथ ही बगीचे भी बने हुए हैं। जिनके मार्ग सीधे और चौड़े हैं। कहीं- कहीं पर लताओं की घनी कुंजे भी बनी हुई हैं।

स्वर्ण-कलश-शोभित भवनों से लगे हुए उद्यान बने,
ऋजु-प्रशस्त पथ बीच-बीच में, कहीं लता के कुंज घने। [११८]

नगर के बगीचों में कहीं- कहीं देवदारु के वृक्ष भी लगे हुए हैं। उन वृक्षों की दूर-दूर तक फैली शाखाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानों उनकी भुजाएँ हों। वृक्ष की शाखाएँ एकदम शान्त हैं मानों वायु की लहरें उनमें आकर उलझ गईं हों। पक्षियों के छोटे-छोटे बच्चे भी आभूषणों की झंकार के समान मीठे- मीठे बोल बोल रहे हैं। नागकेसरों की क्यारियों में विविध प्रकार के सुन्दर सुन्दर फूल भी लगे हुए हैं।

देवदारु के वे प्रलम्ब भुज, जिनमें उलझी वायु-तरंग,
मुखरित आभूषण से कलरव करते सुन्दर बाल विहंग,
आश्रय देता वेणु वनों से निकली स्वर लहरी ध्वनि को,
नागकेसरों की क्यारीं में अन्य सुमन भी थे बहुरंग। [११९]

विशाल भवनों के बीच एक नवीन मण्डल भी बनाया गया है जिसमें एक ऊँचा सिंहासन भी बना हुआ है। उस सिंहासन के सामने एक ओर कोमल चमड़ों से मढ़े हुए छोटे-छोटे मंच भी बने हुए हैं। पहाड़ी अगरु के जलने से मीठी सुगंध भी फैली हुई है -

नव मंडप में सिंहासन सम्मुख कितने ही मंच तहाँ,
एक ओर रक्खे हैं सुन्दर मढ़े चर्म से सुखद जहाँ,
आती है शैलेय अगरु की धूम-गन्ध आमोद-भरी। [१२०]

कलागत सौंदर्य :

कलागत सौंदर्य का भी काव्य में विशेष महत्त्व है। प्रकृति जगत एवं मानव जगत का समस्त सौंदर्य काव्य में आकर कल्पना के कारण पूर्ण रमणीयता प्राप्त कर लेता है। तब वह कलागत सौंदर्य बन जाता है। बाह्य जगत का सौंदर्य काव्य में आकर जिस पद्धति विशेष से आनन्द-दायक या रमणीय बन जाता है उसे कलागत सौंदर्य कहते हैं। [१२१]

कलागत सौंदर्य के विविध रूप हैं जैसे- भाषा, अलंकार, छन्द आदि।

(१) भाषागत सौंदर्य :

अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा एक महत्त्वपूर्ण साधन है। कवि अपने मन के भावों को भाषा के द्वारा ही अभिव्यक्त करता है। डॉ० द्वारिका-प्रसाद सक्सेना के अनुसार- भाषा कवि की स्वानुभूति को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने का सुन्दर माध्यम है, क्योंकि भाषा ही भाव एवं विचारों को वहन करके

कवि की स्वानुभूति को उसके अन्तर्प्रदेश से बाह्य जगत में लाती है और अपनी अपूर्व क्षमता द्वारा उन्हें सर्वजन-सुलभ बनाती है । इस भाषा का स्वरूप पद या पदांशों, वाक्य या वाक्यांशों द्वारा निर्मित होता है ।'[१२२]

छायावाद को भाषा की दृष्टि से समृद्धशाली बनाने का श्रेय प्रसाद जी को जाता है । इन्होंने ब्रजभाषा में काव्य रचना करनी शुरू की थी । 'चित्राधार' इसका सुन्दर उदाहरण है । परन्तु बाद में प्रसाद जी खड़ी बोली की ओर आकर्षित हुए और उसी में काव्य रचना करने लगे । आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी प्रसाद जी की भाषा के विषय में लिखते हैं -'कालिदास की ही भांति ~~उनकी~~ उनकी भाषा में भी समरसता का तत्त्व पाया जाता है अर्थात् अतिवादी की स्थिति उसमें नहीं है, न तो इतनी सरलता है कि ठेठ बोल-चाल की रूक्षता आ जाये और न तो इतना अलंकरण है कि काव्य से पहले भाषा से ही उलझना पड़े ।'[१२३] डॉ॰रमाशंकर तिवारी के अनुसार-'प्रसाद भाषा प्रयोग के कुशल एवं सावधान शिल्पी थे । शब्द एवं अर्थ के समंजस लालित्य को वह कविता में महत्त्व देते थे ।'[१२४]

शब्द समूह :

प्रसाद जी ने अपने काव्य में तत्सम्, तद्भव और देशज तीनों ही प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है ।

(१) तत्सम :

प्रसाद काव्य में तत्सम शब्दों की संख्या अत्यधिक है । कुछ तत्सम शब्द इस प्रकार से हैं - नियति, व्यस्त, राग, काल, प्रभंजन, दिग्वस्त्र, उद्वेग, क्वरी, तन्द्रा, अभिनय, इच्छा, अपांग, कुन्तल, उपकरण, नटराज, जटिल, तुहिन,

ऊर्जस्वित, यजन, शत्रु, अंक, यवनिका, पीयूष, अवयव, त्रिपुर, आवृत्त, विषमता, विराग, वृज्या इत्यादि ।

तदभव :

इस प्रकार के शब्दों का भी प्रयोग प्रसाद जी ने अपने काव्य में किया है जैसे- पीर, परदेसी, जुगनूँ, छाँह, घोट, साँझ, गूँथ, बिजली, राज, सपना, तीखा, लाँघ, रात, भिखारी, सुहाग, साख, भूल, जुगनू, बालू, उलाहने, नींद, तीखा, सपना, प्रान, किरन, नखत इत्यादि ।

देशज :

बकना, लालटेन, हिचकी, चपेट, लीक, बावला, टटोलो, झटपट, बयार, अटकाव, ढोकर, घूँघट, चौकड़ी, खट्टी, उलझन, भौचक्के, छोकरा, कामचलाऊ, किताब, डकार, डाल इत्यादि इसी प्रकार के शब्द हैं ।

विदेशी :

प्रसाद जी ने अंग्रेजी, फारसी, अरबी इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग किया है । जैसे- दाग, चमक, घायल, पाईबाग, परदा, म्यान इत्यादि ।

लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे :

प्रसाद जी ने लोकोक्तियों की अपेक्षा मुहावरों का प्रयोग अधिक किया है । कुछ लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे इस प्रकार से हैं जैसे- आँख लाल करना, सांस उखाड़ना, अपने ही बोझ से दबना, तिल का ताड़ बनना, लकीर पीटना, सुख की बीन बजाना, किसी बात का खटका न रहना, रोंगटे खड़े हो जाना, जीवन का दांव हार बैठना, गरल को अमृत बनाना, किसी काम की आदत पड़ जाना, दिल जल जाना, द्वार सूना होना इत्यादि ।

प्रसाद जी की भाषा की विशेषताएँ :

प्रसाद जी की भाषा की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार से हैं -

(१) चित्रात्मकता :

प्रसाद जी की भाषा की पहली विशेषता है - चित्रात्मकता । प्रसाद जी का काव्य इस प्रकार के उदाहरणों से भरा पड़ा है जिन्हें पढ़ते ही पाठक के समक्ष एक चित्र सा उपस्थित हो जाता है । निम्न उदाहरण को पढ़ते ही उषा रूपी पनिहारिन का एक सुन्दर चित्र मानस में उभर आता है ।

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही -
तारा-घट उषा नागरी ।[१२५]

(२) ध्वन्यात्मकता :

प्रसाद काव्य विभिन्न प्रकार की ध्वनियों से ओत-प्रोत है । जैसे पक्षियों का कलरव, लहरों का गान, झरनों की कल-कल की ध्वनि इत्यादि ।

खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा ।[१२६]
+ + +
मानस-सागर के तट पर
क्यों लोल लहर की घातें
कल-कल ध्वनि से हैं कहतीं
कुछ विस्मृत बीती बातें ?[१२७]
+ + +
निर्झर - सा झिर-झिर करता
माधवी- कुंज छाया में ।[१२८]

(३) प्रतीकात्मकता :

प्रसाद जी ने विभिन्न प्रकार के प्रतीकों के प्रयोग द्वारा अपनी भाषा को सुन्दर और मधुर बनाया है -

तुमने इस सूखे पतझड़ में भर दी हरियाली कितनी
मैंने समझा मादकता है तृप्ति बन गयी वह इतनी । [१२९]

पतझड़ निराशा से पूर्ण जीवन का और हरियाली प्रसन्नता का प्रतीक है ।

(४) संगीतात्मकता :

प्रसाद काव्य में प्रयुक्त शब्दों में एक विशेष प्रकार की संगीतात्मकता है -

दूरागत वंशी- रव-
गूँजता था धीवरों की छोटी-छोटी नावों से । [१३०]

इस प्रकार से प्रसाद जी की भाषा विभिन्न प्रकार के गुणों से युक्त है ।

शब्द शक्तियाँ :

काव्य का सौंदर्य शब्द सौंदर्य पर निर्भर करता है । शब्द की तीन शक्तियाँ मानी गयी हैं (१) अभिधा(२) लक्षणा(३) व्यंजना । त्रिवेणिका के लेख लेखक आशाधर भट्ट ने इन तीनों को क्रमश: गंगा, यमुना और सरस्वती नाम दिया है। [१३१]

प्रसाद काव्य में तीनों शक्तियाँ अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं ।

(१) अभिधा :

इस प्रकार की शक्ति को अग्रिमा और मुख्या आदि नामों से भी पुकारा जाता है। वह शक्ति जो शब्द के संकेतित अर्थ का अवबोध कराए वह अभिधा शक्ति कहलाती है। प्रसाद जी के काव्य में इस प्रकार की शक्ति के भी उदाहरण मिलते हैं। उदाहरण देखिए -

और सोचकर अपने मन में
        जैसे हम हैं बचे हुए ;
क्या आश्चर्य और कोई हो
        जीवन लीला रचे हुए ।[१३२]

(२) लक्षणा :

इसके दो भेद हैं -

(१) रूढ़ि लक्षणा

(२) प्रयोजनवती लक्षणा

(१) रूढ़ि लक्षणा :

हाय रे हृदय ! तूने
कौड़ी के मोल बेचा जीवन का मणि-कोष
और आकाश को पकड़ने की आशा में
हाथ ऊँचा किये सिर दे दिया अतल में।[१३३]

(२) प्रयोजनवती लक्षणा :

इस लक्षणा के भी दो भेद हैं -

(१) शुद्धा लक्षणा

(२) गौणी लक्षणा

(१) शुद्धा लक्षणा :

इसके दो प्रकार हैं -

(१) उपादान लक्षणा

(२) लक्षण- लक्षणा

(१) उपादान लक्षणा :

या कि, नव इन्द्र नील लघु श्रृंग
फोड़कर धधक रही हो कांत ;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत,
माधवी रजनी में अश्रांत ।[१३४]

(२) लक्षण- लक्षणा :

नारी का वह हृदय ! हृदय में
सुधा-सिन्धु लहरें लेता,
बाड़व ज्वलन उसी में जल कर
कंचन-सा जल रंग देता ।[१३५]

(२) गौणी लक्षणा :

इसके दो भेद हैं -

(१) सारोपा लक्षणा

(२) साध्यवसाना लक्षणा

(१) सारोपा लक्षणा :

तिरती थी तिमिर उदधि में
नाविक ! यह मेरी तरणी
मुख चन्द्र किरण से खिंचकर
आती समीप हो धरणी ।[१३६]

(२) साध्यवसाना लक्षणा :

तिर रही अतृप्ति जलधि में
नीलम की नाव निराली
काला-पानी वेला सी
है अंजन-रेखा काली । [१३७]

(३) व्यंजना :

प्रसाद जी के काव्य में व्यंजना शक्ति के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार की शक्ति के दो भेद हैं -

(१) शाब्दी व्यंजना

(२) आर्थी व्यंजना

(१) शाब्दी व्यंजना :

इस शक्ति के दो भेद हैं -

(१) अभिधा मूला शाब्दी व्यंजना

(२) लक्षणामूलाशाब्दी व्यंजना

(१) अभिधा मूलाशाब्दी व्यंजना :

मत्त-मारुत पर चढ़ उद्‌भ्रान्त,
बरसने ज्यों मदिरा अश्रान्त -
सिन्धु बेला-सी घन मंडली,
अखिल किरनों को ढँककर चली,
भावना के निस्सीम गगन,
बुद्धि-चपला का क्षण-नर्तन,
चूमने को अपना जीवन,
चला था वह अधीर यौवन । [१३८]

(२) लक्षणा मूला शाब्दी व्यंजना :

झंझा झकोर गर्जन था
बिजली थी, नीरद माला
पाकर इस शून्य हृदय को
सबने आ डेरा डाला । [१३६]

इस प्रकार से प्रसाद जी ने अपने काव्य में तीनों ही शक्तियों का बड़ा ही कुशलता से वर्णन किया है ।

अलंकार सौंदर्य :

अलंकार शब्द 'अलम्' और 'कार' इन दो शब्दों के मेल से बना है । 'अलम्' का अर्थ है 'भूषण' और 'कार' का अर्थ है 'करने वाला' । इस प्रकार से अलंकार शब्द का अर्थ हुआ 'वह साधन जिसके द्वारा भूषण किया जाए'।

अलंकार काव्य में सौंदर्य वृद्धि के साधन हैं तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं । इनके द्वारा काव्य को सुन्दर और चित्ताकर्षक बनाया जाता है । आभूषणों के समान ये अस्थिर धर्म भी काव्य के आभूषण या अलंकार हैं । जिस प्रकार हार आदि अलंकार नारी की सुन्दरता को चार चाँद लगा देते हैं उसी प्रकार अलंकार भी काव्य की शोभा को बढ़ा देते हैं । अलंकार ही एक ऐसा तत्त्व है जिनसे युक्त एक विशेष कथन काव्य की सीमा में आ जाता है और अलंकार से रहित कथन केवल साधारण कथन मात्र ही रह जाता है । इस प्रकार से काव्य अलंकार रहित नहीं हो सकता । सुमित्रानंदन पंत ने अलंकार के महत्त्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है । वह लिखते हैं कि- 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं । भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार

रीति-नीति हैं। पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झंकारें विशेष घटना से टकराकर फेनाकार हो गई हों, विशेष भावों के झोंके खाकर बाल लहरियाँ, तरुण तरंगों से फूट गई हों, कल्पना के विशेष बहाव में पड़ आवर्तों में नृत्य करने लगी हों। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव हैं। जहाँ भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है, वहां भावों की उदारता शब्दों की कृपण-जड़ता में बंधकर सेनापति के दाता और सूम की तरह 'इकसार' हो जाती है।'[१४०]

प्रसाद जी को अलंकारवादी तो नहीं कह सकते, फिर भी इनके काव्य में विभिन्न प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने बाह्य सज्जामात्र के लिए अलंकार प्रयोग की अपेक्षा आन्तरिक सौंदर्य के प्रयोग पर जोर दिया है। वह लिखते हैं -'कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा भूषण की तरह होती है। ध्यान रहे कि यह साधारण अलंकार जो पहन लिया जाता है, वही नहीं है, किन्तु यौवन के भीतर रमणी-सुलभ श्री की बहिन ही है, घूँघट वाली लज्जा नहीं है।'[१४१] इस प्रकार से प्रसाद जी ने उन अलंकारों को ही ~~महत्व~~ दिया है जो बाह्य ~~सदृश्य~~ सादृश्य की अपेक्षा ~~अन्तर~~ आन्तर सादृश्य को प्रकट करने वाले होते हैं।

प्रसाद जी के काव्य में अलंकारों का सुन्दर विधान हुआ है जो इस प्रकार से है -

अर्थालंकारात्मक सौंदर्य :

काव्य में अर्थालंकार का विशेष महत्व होता है। अर्थ प्रधान रचना को उत्तम काव्य की संज्ञा दी जाती है। प्रसाद जी को यह अलंकार बहुत ही प्रिय है। इसके उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

उपमा :

उधर गरजतीं सिन्धु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों-सी ;
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों-सी ।[१४२]

उधर समुद्र में विकराल मृत्यु के जालों के समान ऊँची- ऊँची लहरें गरज रही थीं । उन लहरों के ऊपर झाग छाये हुए थे, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों जैसे बड़े- बड़े सर्प फनों को उठाकर फेन उगलते हुए इधर चले आ रहे हैं ।

इसके दो भेद हैं -

(१) पूर्णोपमा
(२) लुप्तोपमा

पूर्णोपमा :

बिखरीं अलकें ज्यों तर्क जाल
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाष चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान ।[१४३]

लुप्तोपमा :

तब सरस्वती-सा फेंक साँस,
श्रद्धा ने देखा आस- पास ।[१४४]

उत्प्रेक्षा :

इस अलंकार में प्रस्तुत वस्तु में अप्रस्तुत की कल्पना की जाती है । कल्पना

का क्षेत्र सीमित नहीं होता । प्रसाद काव्य में इसके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं -

उस असीम नीले अंचल में
देख किसी की मृदु मुसक्यान,
मानो हँसी हिमालय की है
फूट चली करती कल गान ।[१४५]

इस अलंकार के तीन भेद हैं ।

(१) वस्तूत्प्रेक्षा
(२) हेतूत्प्रेक्षा
(३) फलोत्प्रेक्षा

वस्तूत्प्रेक्षा :

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ- बन बीच गुलाबी रंग ।[१४६]

हेतूत्प्रेक्षा :

कल-कल नादिनि बहती- बहती -
प्राणी दुखकी गाथा कहती -
करुणाद्रव होकर शान्ति -वारि शीतलता-सी भर लाई थी ।[१४७]

फलोत्प्रेक्षा :

व्याकुल उस मधु सौरभ से
मलयानिल धीरे धीरे
निश्वास छोड़ जाता है
अब बिरह तरंगिनि तीरे ।[१४८]

रूपक :

रूपक अलंकार में उपमेय में उपमान का आरोप कर दिया जाता है अर्थात् उपमेय और उपमान अभेद की कल्पना कर दी जाती है। प्रसाद जी के काव्य में रूपकों की सुन्दर योजना हुई है। उन्होंने नारी सौंदर्य और प्रकृति सौंदर्य के चित्रण रूपकों के द्वारा प्रस्तुत किये हैं। इनके तीन भेद हैं -

(१) सांग रूपक
(२) निरंग रूपक
(३) परंपरित रूपक

सांग रूपक :

इस हृदय-कमल का घिरना
अलि- अलकों की उलझन में
आँसू-मरन्द का गिरना
मिलना निश्वास- पवन में।[१४६]

निरंग रूपक :

ओ चिन्ता की पहली रेखा,
अरी विश्व-वन की व्याली ;
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण।
प्रथम कम्प-सी मतवाली।
है अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा।
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ
जल-माया की चल रेखा।[१५०]

परंपरित रूपक :

जीवन रजनी का अमल इन्दु
न मिला स्वाती का एक बिन्दु
जो हृदय सीप में मोती बन
पूरा कर देता लड़ाहार ,
धीरे से वह उठता पुकार -
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।[१५१]

व्यतिरेक अलंकार :

इस अलंकार में उपमान की अपेक्षा उपमेय को श्रेष्ठ दिखाया जाता है। अर्थात् उपमेय की श्रेष्ठता को स्पष्ट शब्दों में वर्णित किया जाता है। प्रसाद जी ने इस अलंकार का प्रयोग किया है -

विकसित सरसिज-वन वैभव
मधु-उषा के अंचल में
उपहास करावे अपना
जो हँसी देख ले पल में।[१५२]

इस उदाहरण में कवि मादक हँसी के सौंदर्य का वर्णन किया है। प्रेयसी की हँसी इतनी आकर्षक, मोहक एवं सुन्दर होती है कि उषा की लालिमा से युक्त प्रभात में खिले हुए कमल की कान्ति भी फीकी पड़ जाती है। इस उदाहरण में उपमान की अपेक्षा उपमेय की श्रेष्ठता को दर्शाया गया है। इसलिए यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार है।

प्रतीप अलंकार :

यह अलंकार उपमा अलंकार के बिल्कुल विपरीत होता है। इसमें उपमान

को उपमेय की अपेक्षा हीन बताया जाता है । प्रसाद जी के काव्य में इस अलंकार का कहीं-कहीं प्रयोग मिल जाता है -

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान । [१५३]

जमा हुआ गतिहीन हिम दूर-दूर तक फैला हुआ था । मनु का हृदय भी स्तब्ध था । लगता था मानो मनु के हृदय और हिम में गुण साम्य हो । इस उदाहरण में मनु के हृदय (उपमेय) को उपमान बना दिया गया है । इसलिए यहाँ पर प्रतीप अलंकार है ।

संदेह अलंकार :

थी किस अनंग के धनु की
वह शिथिल शिंजिनी दुहरी
अलबेली बाहुलता या
तनु छवि-सर की नव लहरी ? [१५४]

यहाँ कवि ने भुजाओं के सौंदर्य का निरूपण किया है । कवि को प्रेयसी की भुजायें बड़ी ही सुन्दर और कोमल प्रतीत होती हैं । उसके लिए वे कितने ही उपमान प्रस्तुत करते हैं । उन्हें कभी कामदेव के पुष्प-धनुष की ढीली-दुहरी डोरियाँ की संज्ञा दी है तो कभी उन्हें 'शरीर के सौंदर्य सरोवर की दो नवीन लहरें' कहा है तो कभी वह अलबेली लता प्रतीत होती हैं । इस प्रकार से कवि संशय में पड़ा हुआ है कि भुजाओं की उपमा किससे करें दें । अत: यहाँ पर सन्देह अलंकार है ।

शब्दालंकारात्मक सौंदर्य :

इस अलंकार के द्वारा जहाँ काव्य में नाद सौंदर्य की वृद्धि होती है वहीं

काव्य में संगीतात्मकता का गुण भी आ जाता है । शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, वीप्सा, वक्रोक्ति आदि अलंकार आ जाते हैं । प्रसाद काव्य में इसकी रमणीय योजना हुई है -

अनुप्रास :

अर्थालंकार में जिस प्रकार उपमा का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं उसी प्रकार शब्दालंकार में अनुप्रास का सर्वाधिक महत्त्व है । प्रसाद जी ने इस अलंकार का बड़ी ही कुशलता से विधान किया है । उदाहरण देखिए -

सुन्दर सुहृद सम्पत्ति सुखदा सुन्दरी ले साथ में
संसार यह सब सौंपना है चाहता तब हाथ में । [१५५]

यहाँ 'स' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति हुई है । अतः अनुप्रास अलंकार है । इस अलंकार के कई भेद हैं उनमें से कुछ इस प्रकार से हैं -

छेकानुप्रास :

कुसुम कानन-अंचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार ;
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार । [१५६]

वृत्यनुप्रास :

मेरी लहरीली नीली अलकावली समान
लहरें उठती थीं मानों चूमने को मुझको । [१५७]

यमक :

विश्व-भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल । [१५८]

यहाँ पर `भर` शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है और दोनों बार उसका अर्थ भी भिन्न-भिन्न है। पहले `भर` का अर्थ है संपूर्ण और दूसरे `भर` का अर्थ है `परिपूर्ण`। इस प्रकार से यहाँ पर यमक अलंकार है।

वीप्सा :

रो-रोकर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी।[१५९]

`रो-रो` तथा `सिसक-सिसक` में वीप्सा अलंकार है।

पाश्चात्य अलंकार :

इसके अतिरिक्त कुछ पाश्चात्य अलंकार भी हैं जिनको प्रसाद जी ने अपने काव्य में अंकित किया है। जैसे- मानवीकरण, विशेषणविपर्यय, ध्वन्यर्थ-व्यंजना इत्यादि। पाश्चात्य अलंकारों का सौन्दर्य द्रष्टव्य है -

मानवीकरण :

पाश्चात्य अलंकारों में मानवीकरण का प्रयोग बहुत अधिक होता है। प्रकृति पर मानवीय गुणों का आरोप ही मानवीकरण कहलाता है। प्रसाद जी का प्रकृति सौंदर्य इस अलंकार से ओत-प्रोत है।

उदाहरण देखिए -

तारा-हीरक-हार पहनकर, चंद्रमुख -
दिखलाती, उतरी आती थी चाँदनी
(शाही महलों के ऊँचे मीनार से)
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से।[१६०]

ध्वन्यर्थ-व्यंजना :

इसमें कवि शब्दों की ध्वनि से ही अर्थ का बोध करा देता है। प्रसाद जी के काव्य में इस प्रकार की ध्वनियाँ स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती हैं।

उधर गरजतीं सिन्धु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों-सी ;
चली आ रही फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों-सी।[१६१]

\+ + +

धू- धू करता नाच रहा था
अनस्तित्व का ताण्डव नृत्य।[१६२]

इन दोनों उदाहरणों में 'गरजती' और 'धू- धू' शब्द अपनी ध्वनि ~~सर~~ से अर्थ की व्यंजनापूर्ण रूप से प्रस्तुत कर देते हैं।

विशेषण विपर्यय :

इसके उदाहरण भी प्रसाद काव्य में कहीं-कहीं देखने को मिलते हैं -

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भींगी पलकों का लगना।[१६३]

इस प्रकार से प्रसाद जी के काव्य में विभिन्न प्रकार के अलंकारों की चित्ताकर्षक योजना हुई है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि का तो विशेष योगदान रहा है। संक्षेप में अलंकारों का विनियोजन प्रसाद जी ने अपने काव्य में इस प्रकार से किया है कि उससे काव्य के सौंदर्य में अभिवृद्धि ही हुई है।

छन्द विधान :

छन्द काव्य का मेरु दण्ड है। इसके प्रयोग से भाषा में प्रेषणीयता के गुण की वृद्धि होती है। कवि इसी गुण की वृद्धि के लिए छन्दों का प्रयोग करते हैं। इससे एक ओर तो अभिव्यंजना में संगीतात्मकता आ जाती है और दूसरी ओर स्वर लययुक्त मधुर छन्द भावानुकूलता को प्राप्त होकर श्रोता के हृदय को अनायास आकृष्ट कर लेते हैं।

प्रसाद जी ने भी छन्दों के महत्त्व को स्वीकार किया है। उनके मतानुसार 'प्राय: संक्षिप्त प्रभावमयी तथा चिरस्थायिनी जितनी पद्यमय रचना होती है, उतनी गद्य रचना नहीं। इसी स्थान में हम संगीत की भी योजना कर सकते हैं। सद्य: प्रभावोत्पादक जैसा संगीत पद्यमय होता है, वैसी गद्य रचना नहीं।'[१६४]

प्रसाद जी ने अपनी रचनाओं 'चित्राधार', 'कानन-कुसुम', 'झरना', 'आँसू', 'लहर', 'कामायनी' आदि में विभिन्न प्रकार के प्राचीन-नवीन, तुकान्त-अतुकान्त आदि छन्दों का प्रयोग किया है। इतना ही नहीं आवश्यकता पड़ने पर दो भिन्न-भिन्न छन्दों का मिश्रण करके एक नवीन छन्द की सृष्टि भी की है। प्रसाद काव्य में विभिन्न छन्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है -

परम्परागत छन्द :

प्रसाद जी ने अपने काव्य में परंपरागत छंदों का प्रयोग किया है -

ताटंक छंद :

ताटंक छंद में प्रत्येक चरण में ३० मात्रायें होती हैं, १६-१४ पर यति होती है और अन्त में मगण होता है। प्रसाद जी के काव्य में इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं -

मैं भी भूल गया हूँ कुछ
हाँ स्मरण नहीं होता, क्या था ।
प्रेम, वेदना, भ्रान्ति या कि क्या ?
मन जिसमें सुख सोता था ।
मिले कहीं वह पड़ा अचानक
उसको भी न लुटा देना ;
देख तुझे भी दूँगा तेरा
भाग, न उसे भुला देना ।[१६५]

वीर छन्द :

यह छंद ताटंक छंद से बिल्कुल मिलता जुलता है । इसमें ३१ मात्राएँ होती हैं । १६-१५ पर विराम और अन्त में एक गुरु तथा एक लघु होता है । 'कामायनी' का पहला पद 'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर' इसी छंद में लिखा गया है ।

रूपमाला छंद :

इस छंद को मदन छंद भी कहा जाता है । 'कामायनी' का 'वासना सर्ग' रूपमाला छंद में लिखा गया है । उदाहरण देखिए -

एक जीवन सिन्धु था, तो वह लहर लघु लोल ;
एक नवल प्रभात तो वह स्वर्ण किरण अमोल ।
एक था आकाश वर्षा का सजल उद्दाम ;
दूसरा रंजित किरण से श्री-कलित घनश्याम ।[१६६]

सार छंद :

सार छंद के भी उदाहरण प्रसाद जी के काव्य में मिलते हैं -

आकुलि ने तब कहा, देखते =(१६ मा०)
नहीं साथ में उसके, =(१२ मा०)
कर्म यज्ञ से जीवन के =(१६ मा०)
सपनों का स्वर्ग मिलेगा =(१२मा०)
ठीक यही है सत्य यही है =(१६ मा०)
उन्नति सुख की सीढ़ी।[१६७] =(१२ मा०)

गीतिका छन्द :

प्रसाद जी ने `चित्राधार` और `कानन-कुसुम` की कुछ कविताओं में इस छंद का प्रयोग किया है। उदाहरण अवलोकनीय है -

सौरभित सरसिज युगल एकत्र होकर खिल गये
लोल अलकावलि हुई मानों मधुव्रत मिल गये
श्वास मलयज पवन सा आनन्दमय करने लगा।[१६८]

पद्धरि छन्द :

`लहर` की निम्न पंक्तियाँ इसी छंद में लिखी गयी हैं -

अब जागो जीवन के प्रभात।
वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे
उषा बटोरती अरूण गात।[१६९]

पादाकुलक छन्द :

इस छन्द में १६ मात्राएँ होती हैं। मात्राओं का क्रम चार चौकल के रूप में रहता है। `कामायनी` का `काम` और `लज्जा` सर्ग पादाकुलक छन्द में ही लिखे गये हैं।

(२) मिश्रित छन्द :

प्रसाद जी ने दो प्रचलित छन्दों को मिलाकर एक नये छन्द की सृष्टि भी की है। प्रसाद जी ने `पादाकुलक` और `पद्धरि` छंदों के सम्मिश्रण से ३२ मात्राओं के एक नवीन छन्द का निर्माण किया है। उदाहरण देखिए -

मेरी आँखों का सब पानी	पादाकुलक
तब बन जायेगा अमृत स्निग्ध	पद्धरि
उन निर्विकार नयनों में जब	पादाकुलक
देखूँगी अपना चित्र मुग्ध।[१७०]	पद्धरि

(३) कवि निर्मित छन्द :

प्रसाद जी प्रतिभाशाली कवि थे। इन्होंने अनेक नये छन्दों का निर्माण किया है। `कामायनी` के इड़ा, रहस्य, आनन्द सर्ग में प्रसाद जी ने स्वनिर्मित नये छंदों का प्रयोग किया है। `आँसू` काव्य आँसू अथवा आनन्द छन्द में लिखा गया है जो कि प्रसाद निर्मित छन्द है। इन स्वनिर्मित छंदों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

`रहस्य` सर्ग में प्रसाद जी ने ताटंक छंद के अन्त में एक गुरू(S) जोड़कर नये छन्द का निर्माण किया है। १६-१६ की यति से ३२ मात्राओं का यह छन्द बन गया है -

दोनों पथिक चले हैं कब से ऊँचे-ऊँचे चढ़ते-चढ़ते,
श्रद्धा आगे मनु पीछे थे, साहस उत्साही से बढ़ते।[१७१]

`आँसू` काव्य में भी प्रसाद जी ने नवीन छंद का प्रयोग किया है। इस नवीन छन्द में १४-१४ मात्राओं के विराम से २८ मात्राएँ होती हैं -

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भींगी पलकों का लगना । [१७२]

'कामायनी' के 'आनन्द' सर्ग में भी प्रसाद जी ने इस नवीन छंद का प्रयोग किया है । उदाहरण देखिए -

चलता था धीरे- धीरे
वह एक यात्रियों का दल
सरिता के रम्य पुलिन में
गिरि पथ से, ले निज सम्बल । [१७३]

इस प्रकार से प्रसाद जी ने परंपरागत छन्दों के साथ नये- नये छन्दों का भी प्रयोग अपने काव्य में किया है । अलंकार के समान इससे उनके काव्य के सौंदर्य में भी अभिवृद्धि हुई है ।

सन्दर्भ :

१- हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य : पृ० ४७४

२- प्रसाद : आकाशदीप(कहानी संग्रह) 'समुन्द्र सन्तरण' नामक कहानी : पृ० १०६

३- प्रसाद : कामायनी : पृ० १०१

४- वही : पृ० ७०

५- प्रसाद : कानन-कुसुम : पृ० ५१

६- प्रसाद : प्रेमपथिक : पृ० ३०-३१

७- प्रसाद : आँसू : पृ० ३३

८- प्रसाद : झरना : पृ० ६६

९- वही : पृ० ६४

१०- प्रसाद : कामायनी, पृ० २५९

११- वही, पृ० २११

१२- डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, जयशंकर प्रसाद का कामायनी पूर्ण काव्य, पृ०१९०

१३- प्रसाद, झरना, पृ० २०

१४- प्रसाद : लहर : पृ० ११

१५- प्रसाद, कामायनी, पृ० ५३

१६- प्रसाद, महाराणा का महत्त्व, पृ० १३

१७- प्रसाद, आँसू, पृ० २१

१८- प्रसाद, कामायनी, पृ० ५२

१९- प्रसाद, आँसू, पृ० २१

२०- वही, पृ० २२

२१- वही, पृ० २२

२२- वही, पृ० २३

२३- वही, पृ० २२
२४- वही, पृ० २३
२५- प्रसाद, कामायनी, पृ० १२२
२६- प्रसाद, आँसू, पृ० २४
२७- प्रसाद, कामायनी, पृ० १०५
२८- वही, पृ० ६१
२९- वही, पृ० १०४
३०- वही, पृ० १४२
३१- वही, पृ० २३०
३२- प्रसाद, कामायनी, पृ० २०९
३३- वही, पृ० २०६
३४- वही, पृ० १४६
३५- वही, पृ० १६
३६- प्रसाद, महाराणा का महत्त्व, पृ० ५
३७- प्रसाद, विशाख, पृ० ७५
३८- प्रसाद, महाराणा का महत्त्व, पृ० १०
३९- वही, पृ० १२
४०- प्रसाद, कामायनी, पृ० १४७
४१- वही, पृ० १८८
४२- डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित, छायावादी कवियों का सौंदर्य विधान, पृ० १८०
४३- प्रसाद, कामायनी, पृ० १७३
४४- वही, पृ० १७३
४५- प्रसाद, कानन-कुसुम, पृ० ४६-४७
४६- वही, पृ० ४७
४७- वही, पृ० ४७

४८- गुलाबराय : प्रसाद जी की कला, पृ० २७६

४९- रविन्द्रनाथ टैगोर, साधना, पृ० १४

५०- डॉ० विजयेन्द्र स्नातक का `काव्य और प्रकृति` नामक लेख : पंडित जगन्नाथ तिवारी, अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० २०८

५१- प्रसाद, `चित्राधार, पृ० १२८

५२- वही, पृ० १२९-१३०

५३- प्रसाद, काव्य, कला तथा अन्य निबंध, पृ० १४

५४- डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, जयशंकर `प्रसाद` वस्तु और कला, पृ० २२५

५५- वही, पृ० २२५

५६- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० ६७

५७- डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, आधुनिक हिंदी कविता, सिद्धान्त और समीक्षा : पृ० १७६

५८- प्रसाद, कामायनी, पृ० ३८

५९- प्रसाद : स्कन्दगुप्त, पृ० १४७

६०- प्रसाद : लहर, पृ० १६

६१- वही, पृ० २०

६२- प्रसाद, कामायनी, पृ० १६१

६३- वही, पृ० २२८

६४- प्रसाद, लहर, पृ० ६

६५- प्रसाद, झरना, पृ० १३

६६- प्रसाद, आँसू, पृ० १८

६७- प्रसाद, लहर, पृ० ४५

६८- वही, पृ० २०

६९- वही, पृ० ११

७०- प्रसाद, कामायनी, पृ० ३३
७१- प्रसाद, लहर, पृ० २१
७२- वही, पृ० २२
७३- प्रसाद, कामायनी, पृ० ७७
७४- वही, पृ० ३३
७५- वही, पृ० ३९
७६- वही, पृ० ४६
७७- वही, पृ० ४६
७८- वही, पृ० ४७
७९- प्रसाद, आँसू, पृ० २७
८०- प्रसाद, कामायनी, पृ० ११७
८१- वही, पृ० २१९
८२- वही, पृ० ४७
८३- वही, पृ० ६९
८४- प्रसाद, झरना, पृ० २३
८५- प्रसाद, महाराणा का महत्त्व, पृ० १८-१९
८६- प्रसाद, कामायनी, पृ० ४५
८७- वही, पृ० ८४
८८- वही, पृ० १६२
८९- प्रसाद, झरना, पृ० २६
९०- प्रसाद, कामायनी, पृ० १७०
९१- वही, पृ० २४७
९२- प्रसाद, झरना, पृ० २५
९३- वही, पृ० २५

९४- प्रसाद, कामायनी, पृ० ६७

९५- वही, पृ० ३३

९६- प्रसाद, कानन-कुसुम, पृ० २५

९७- प्रसाद, लहर, पृ० ६३

९८- प्रसाद, कामायनी, पृ० ६७

९९- प्रसाद, झरना, पृ० ४७

१००- प्रसाद, कामायनी, पृ० २६२

१०१- वही, पृ० ८६

१०२- प्रसाद, महाराणा का महत्त्व, पृ० १६

१०३- प्रसाद, लहर, पृ० ५६-६०

१०४- प्रसाद, आँसू, पृ० ३१

१०५- प्रसाद, ~~लहर, पृ०~~ चन्द्रगुप्त, पृ० ५०

१०६- प्रसाद, लहर, पृ० २६

१०७- प्रसाद, कामायनी, पृ० २४

१०८- वही, पृ० २५

१०९- प्रसाद, ~~प्रेमपथिक, पृ० १३~~ चित्राधार, पृ० १६

११०- प्रसाद, प्रेमपथिक, पृ० १३

१११- प्रसाद, कामायनी, पृ० १४४

११२- वही, पृ० १४४

११३- वही, पृ० १४४

११४- वही, पृ० १७४

११५- वही, पृ० १७४

११६- वही, पृ० १७५

११७- वही, पृ० १७५

११८- वही, पृ० १७५

११९- वही, पृ० १७५

१२०- वही, पृ० १७६

१२१- डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, जयशंकर 'प्रसाद' वस्तु और कला, पृ० ३२४

१२२- डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन : पृ० २०३

१२३- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, कवि निराला, पृ० ८७

१२४- डॉ० रमाशंकर तिवारी, कामायनी प्रेरणा और परिपाक, पृ० ४४६

१२५- प्रसाद, लहर, पृ० २१

१२६- वही, पृ० २१

१२७- प्रसाद, आँसू, पृ० ८

१२८- वही, पृ० १८

१२९- प्रसाद, कामायनी, पृ०

१३०- प्रसाद, लहर, पृ० ५७

१३१- शक्ति भक्ति व्यक्ति गंगा-यमुना-गूढ़-निर्झरा : ।
निर्विच्छिन्नस्य सन्त्यत्र यत्तदेषा त्रिवेणिका ।।
आशाधर भट्ट, त्रिवेणिका, पृ० १

१३२- प्रसाद, कामायनी, पृ० ४१

१३३- प्रसाद, लहर, पृ० ७०

१३४- प्रसाद, कामायनी, पृ० ४७

१३५- ~~प्रसाद, आँसू, पृ० ४१~~ वही, पृ० २०७

१३६- प्रसाद, आँसू, पृ० ४१

१३७- वही, पृ० २२

१३८- प्रसाद, लहर, पृ० २३

१३९- प्रसाद : आँसू, पृ० १५

१४०- सुमित्रानंदन पंत : पल्लव , पृ० १६

१४१- प्रसाद, काव्य, कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२६
१४२- प्रसाद, कामायनी, पृ० २५
१४३- वही, पृ० १६२
१४४- वही, पृ० २२८
१४५- वही, पृ० ३८
१४६- वही, पृ० ५२
१४७- प्रसाद, लहर, पृ० १४
१४८- प्रसाद, आँसू, पृ० ३१
१४९- वही, पृ० १२
१५०- प्रसाद, कामायनी, पृ० १७
१५१- प्रसाद, लहर, पृ० ३५
१५२- प्रसाद, आँसू, पृ० २३
१५३- प्रसाद, कामायनी, पृ० १५
१५४- प्रसाद, आँसू, पृ० २४
१५५- प्रसाद : कानन-कुसुम, पृ० ३०
१५६- प्रसाद, कामायनी, पृ० ५३
१५७- प्रसाद, लहर, पृ० ५८
१५८- प्रसाद, कामायनी, पृ० ६१
१५९- प्रसाद, आँसू, पृ० १५
१६०- प्रसाद, महाराणा का महत्त्व, पृ० १८-१९
१६१- प्रसाद, कामायनी, पृ० २५
१६२- वही, पृ० २९
१६३- प्रसाद, आँसू, पृ० ११

१६४- इन्दु-कला २, किरण १, श्रावण शुक्ल सं० १६६७, पृ० २०
१६५- प्रसाद, कामायनी, पृ० ४८
१६६- वही, पृ० ८३
१६७- वही, पृ० १२०
१६८- प्रसाद, कानन-कुसुम, पृ० २५
१६९- प्रसाद, लहर, पृ० २६
१७०- प्रसाद, कामायनी, पृ० २२६
१७१- वही, पृ० १२२
१७२- प्रसाद, आँसू, पृ० ११
१७३- प्रसाद, कामायनी, पृ० १२६